फिर कभी ऐसा ना हो !

स्नेह लता
लखनऊ (उ.प्र.)

भीड़ इतनी अधिक नहीं थी फिर भी सामने से आती हुई कार के अचानक आ जाने से एक्सीलेटर से हटाकर ब्रेक पर पैर रखना पड़ा। कार के तेजी से रूकने के साथ ही उसे एक तगड़ा झटका लगा, बड़ा गुस्सा आया। कैसे बदतमीज लोग हैं, अगर ठीक से कार नहीं चला सकते हैं तो न चलाऐं। यूँ खुद तो मरेंगे ही दोष दूसरों पर लगाएगे। भीड़ जमा हो चुकी है उतरना ही पड़ेगा, बचकर निकलने की कोई गुंजाइश नहीं है कार पर एक नज़र डाली, कार को ज़्यादा नुकसान नहीं है। एक दो खरोंचे आ गई हैं और सामने वाली लाइट का शीशा थोड़ा सा टूट गया है। शीशा ठीक करा लेंगे मगर अब गाड़ी हटे कैसे? जब तक सामने वाला खुद पीछे न हटाए। मेरे पीछे तो गाड़ियों की लाइन लग चुकी है, इसे पीछे नहीं हटाया जा सकता। वैसे भी मेरे बस में यह सब कहाँ है। मैंने तो जैसे–तैसे चलाना ही सीखा है।

गेट खोलकर जो व्यक्ति खड़ा हुआ उसकी पीठ मेरी ओर थी, मुझे नहीं पता वह कौन है, बड़ा गुस्सा आ रहा था। इतना तो इसे कम से कम सोचना ही चाहिए कि चारों तरफ भीड़ जुट रही है और लोगों को निकलने में असुविधा हो रही है। तभी उसने पलटकर देखा, मुझे लगा इस व्यक्ति को मैंने कहीं देखा है पर कहाँ? एकदम से याद आया अरे हम लोग रूद्रप्रयाग में मिले थे, पर यह क्या यह तो खड़े भी नहीं हो पा रहे, बड़ी मुश्किल से बैसाखी का सहारा लेकर खड़े हुए। मुझे देखते ही वह भी पहचान गए। एक साल में ही क्या से क्या हो गया। मैंने कहा, 'मुझे पता नहीं था कि आप हैं', उन्होंने ड्राइवर को गाड़ी पीछे हटाने को कहा। मैंने कहा, 'पहले आप मेरे घर चलिए, मुझे आपसे बहुत सी बातें करनी हैं। मैंने आपको कहाँ–कहाँ नहीं ढूँढा। अपनी कार मोड़ ली। अब मेरी कार आगे आगे थी, और वह पीछे आ रहे थे। मेरा मन कार की गति से चल रहा था।

पिछले साल की बात है, रूद्रप्रयाग से जैसे ही हम लोग थोड़ा आगे बढ़े, रास्ता दो भागों में बंटा था। एक सड़क बद्रीनाथ को जा रही थी और दूसरी केदारनाथ को। पतली–पतली सड़कें दोनो तरफ से कारों की लम्बी कतार, बसें और ट्रक भी उसी लाइन में चल रहे थे। टैक्सी में मैं और मेरे पति थे। मुझे तीर्थयात्रा करना बहुत अच्छा लगता है। एक मन में शुद्ध पवित्र आध्यात्मिकता का भाव जगता है , तो दूसरी ओर प्रकृति और पर्यावरण के सान्निध्य में रहने का सुख प्राप्त होता है। हमारे ऋषि मुनियों ने शायद यही सोचकर चार धाम तीर्थ यात्रा, बारह ज्योतिर्लिंगों, इक्यावन शक्तिपीठों की अवधारणा रची होगी। इस तरह से इतिहास, भूगोल, साहित्य, संस्कृति का समन्वय हो सकेगा।

मैं इन्हीं विचारों में बैठी सोच रही थी कि मेरे पति शर्माजी ने कहा, 'देखो नदी कितनी गहरी है और लोगों ने इससे बिलकुल सटाकर मकान बनाए हैं। मुझे तो पानी के तेज बहाव और उसकी आवाज़ से डर लगता है। तुम्हें जाने क्या मज़ा आता है जब देखो घूमने की बातें करती रहती हो।

तुम्हें क्या परेशानी हो रही है ? आराम से टैक्सी में बैठे हो, रहने के लिए रात में कितने शानदार होटल में रूके थे नदी किनारे का दृश्य कितना सुन्दर लग रहा था। छह मंजिला होटल था बिलकुल स्वर्ण रेखा नदी के किनारे। गढ़वाल का श्रीनगर भी कश्मीर के श्रीनगर से कम नहीं है।

हाँ पिछली बार पंद्रह साल पहले तो गिने चुने घर थे। दो चार धर्मशालाएं थीं। गाड़ियों की ऐसी भरमार नहीं थी। हम लोग भी बस से ही आए थे। बस में कई स्टेट के श्रद्धालु थे। महाराष्ट्र वाले बाबाजी की याद है। इतनी सर्दी में भी नंगे बदन ही पैदल चले थे। हम लोग उन्हें साईं कहते थे। बेचारे सबसे पीछे रह जाते थे पर कहते किसी से कुछ नहीं थे। वाकई बहुत भले थे। बस के सभी 48 यात्री कैसे इकट्ठे होकर एक ही जगह खाना खाते थे। बिलकुल एक परिवार की तरह हो गए थे। पर अब तो जितने परिवार उतनी गाड़ियाँ, पजेरो, बलेरो, टवेरा, टाटा सूमो, जैसे कोई होड़ लगी है। अच्छा तुम बताओ तुम्हें यह श्रद्धालु लग रहे हैं। मुझे तो पिकनिक मनाने आए जैसे ज़्यादा लग रहे हैं।

पुराने ज़माने में जब लोग तीर्थयात्रा को जाते थे तब सब कुछ छोड़कर चना चबेना, सत्तू लेकर जाते थे। आज हर सौ कदम पर होटल खुला है। तरह–तरह की खाने पीने की चीजें बिकती हैं। पॉलीथीन के पैकेट जहाँ तहाँ फैले पड़े हैं। आजकल इतने छोटे बच्चों को ले जाने की क्या जरूरत है। यह गोदी वाले बच्चे तो कुछ समझ भी नहीं सकते, उल्टे ठंड और लग जाएगी। पहाड़ों के मौसम का वैसे ही कोई भरोसा नहीं रहता। न जाने कब बरसात होने लगे, कब बर्फ पड़ जाए। लैंडस्लाइड तो होते ही रहते हैं। देखो न जब तब अखबारों में छपता रहता है, चट्टान गिरने से तीर्थ यात्री फंसे, बस नदी में गिरी, वगैरा। आगे वाली पजेरो रूक गई थी। यहाँ सड़क कुछ चौड़ी थी और भी कई गाड़ियों वाले लोग नीचे उतर आए थे। फोटो खिंचवा रहे थे। पजेरो से दो औरतें, दो आदमी और दो बच्चे उतरे। औरतों की उम्र तीस–पैतीस वर्ष और बच्चे छह–सात वर्ष के लग रहे थे। उन्हें देखकर कर ही लग रहा था कि काफी पैसे वाले होंगे । सोलह लाख की गाड़ी लेकर जो चलेगा वह अमीर ही होगा। शर्मा जी तो सड़क किनारे बनी दीवार पर बैठ गए। मैं फोटो खींचने लगी।

तभी वह लोग बोले हमारी ग्रुप फोटो कैसे आएगी? आंटी आप हमारी फोटो खींच देंगी। मैंने कहा, हाँ–हाँ क्यों नहीं?

अंशु तुम बड़े डैडी के साथ खड़े हो और मैं पापा के बगल में खड़ा होऊँगा।
बड़ी मम्मी, बड़े पापा, मम्मी पापा आइए आंटी हमारी फोटो खींच देगीं।

फोटो खींचते–खींचते ही उन्होंने हमें बताया कि वह दोनों भाई अपने परिवार समेत अपनी कार से आए हैं। बच्चों की छुट्टियाँ थीं, सोचा चलो घूम भी आएंगे। वैसे मैं अपना परिचय बता दूँ–'मेरा नाम उमाकान्त है और यह मेरे बड़े भाई शिवाकान्त हैं। मैं लखनऊ में पी०डब्लू०डी० में एक्सीक्यूटिव इंजीनियर हूँ और भाई साहब का दिल्ली में रेडीमेड गारमेंट का शो रूम है।'

'अरे!, हम भी लखनऊ से ही आए हैं। स्टेशन के पास ही घर है। कभी आइएगा।' यह कहकर हमने अपना विजिटिंग कार्ड दिया। उन्होंने भी अपना परिचय पत्र हमें दिया। थोड़ी देर में ही हम लोग ऐसे बातें करने लगे जैसे कितनी पुरानी रिश्तेदारी हो।

दस पन्द्रह मिनट रूकने के बाद हम फिर आगे बढ़ने लगे। मौसम में ठंडक बढ़ गई थी और आसमान में काले घने बादल छाने लगे थे। शर्मा जी ने कहा, 'देखती नहीं हो बरसात होने वाली है।' हमारा टैक्सी ड्राइवर पहाड़ का ही था। शायद उसे मौसम की अच्छी जानकारी रही होगी। बोला हमारा कहना मानिए, साहब इस समय आगे बढ़ना ठीक नहीं है। लैंडस्लाइड हो गया तो फंस जाएगें। थोड़ी देर देख लेते हैं ठीक रहेगा, तो फिर चलेंगे।

शर्मा जी को गुस्सा आ रहा था। उन्हें वैसे भी मेरी तरह एडवेंचर करने का कोई शौक नहीं, 'बोले हाँ–हाँ, तुम वापस चलो।

मैंने कहा, 'वह देखो उमाकान्त जा रहे हैं कि नहीं। तुम ऐसे कह रहे हो।'

उन्हें जाने दो और तुम्हें ज़्यादा जाने की फिकर हो तो तुम भी चली जाओ। हम लोग वापस आ गए। रूद्रप्रयाग में भाई साहब का भी घर था।

अभी दो घंटे भी नहीं बीते थे कि एकाएक धड़ाम की आवाज हुई, ऐसा लगा जैसे प्रलय आ गई हो। हमारे सामने पहाड़ टूट–टूट कर गिर रहे थे। मकान ताश के पत्तों की तरह ढहे जा रहे थे। ऐसा भयंकर दृश्य पहले कभी देखा नहीं था। बस नदी का गर्जन, पहाड़ों की दहाड़ सब कुछ मिटा रहा था।

नदी इतनी तेजी से बह रही थी कि लग रहा था जैसे समूची धरती को बहा ले जाएगी। हमें खुद पता नहीं था कि हम जिन्दा हैं या मर चुके हैं। आधे घंटे की प्रलय के बाद जब हमें होश आया, हमने महसूस किया कि इसे ईश्वर का करिश्मा कहें या कुदरत का कहर, हमारे चारों ओर इमारतों के मलबे का ढेर था। जिस जगह पर हम रूके थे, वहाँ से दहाड़ती हुई नदी सामने दिखाई दे रही थी। अपनी आँखों पर हमें भरोसा नहीं हुआ।

नदी में बड़ी बड़ी चट्टानें टूट कर गिर पड़ी थीं। कई कारें नदी में तैर रही थीं। अभी कुछ देर पहले जहाँ शानदार होटल था, बिल्डिंगें थीं, वह सब खंडहर में बदल चुकी थीं। बिजली पानी सब गुल हो गए थे। सामने की सड़क टूट गई थी। खुद हमारी टैक्सी का कोई पता नहीं था। हम कैसे बच गए, हमें खुद मालूम नहीं। आज भी उस घटना की याद दिल दहला देती है। दो दिन बाद किसी तरह ऊँचे नीचे पहाड़ों पर पैदल चलकर मीलों तक थके मांदे किसी तरह वापस हरिद्वार पहुँचे। अखबार, रेडियो, टी वी, सब उत्तराखण्ड की त्रासदी से भरे पड़े थे। हमें अपने साथ वाले उमाकान्त, शिवाकान्त की याद आई। उनका विजिटिंग कार्ड पर्स में था। मोबाइल नं० पर बहुत बार फोन मिलाया मगर कोई खबर नहीं मिली। आज वही उमाकान्त मेरे सामने थे जिनकी मैंने कल्पना नहीं की थी।

उमाकान्त जी को देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ। अभी मात्र साल भर भी नहीं बीता था। कितने लम्बे चौड़े, खूबसूरत नौजवान थे। आज बड़ी मुश्किल से बैसाखी का सहारा लेकर चल पा रहे थे। चेहरे से भी बूढ़े और बीमार लग रहे थे। बैठते ही रोने लगे।

क्या बताऊँ मेरी तो दुनिया ही उजड़ गई। तीर्थ यात्रा पर सपरिवार गया था। शंकर भगवान का आर्शीवाद पाने के लिए पर जाने किन जन्मों की सजा मुझे भोलेनाथ ने दे डाली। मैंने तो किसी का कभी कुछ नहीं बिगाड़ा। कुछ देर बाद संयत हुए तो बोले उस दिन आप लोग तो वापस लौट आए थे मगर हमने सोचा थोड़ी देर की बात है , काले बादल आ रहे हैं, थोड़ी देर बरस कर चले जाएगें। यही सोचकर मुश्किल से चार कि०मी० ही आगे चले होंगे कि एकाएक एक बड़ी सी चट्टान टूट कर गिर पड़ी। जब तक ड्राइवर कुछ बचाता चट्टान हमारी कार के ऊपर गिर पड़ी, मगर संयोग की बात थी कि उस चट्टान से हमारी कार को तो नुकसान हुआ पर हम लोगों को कुछ ज्यादा चोट नहीं लगी।

किसी तरह बड़ी मुश्किल से कार से बाहर निकले। मगर आगे का रास्ता बन्द हो चुका था। सड़क पर चारों तरफ मलबा फैला हुआ था, न आगे जा सकते थे और पीछे का रास्ता भी बन्द हो चुका था। घनघोर बरसात होने लगी। चट्टानें खिसक रहीं थीं। चारों ओर प्रलय जैसा लग रहा था। गंगा नदी में जैसे तूफान आ गया था। देखते ही देखते कई गाड़ियाँ तो नदी में गिर गईं। मेरे सामने एक ट्रक सीधा नदी में जा गिरा। भगवान जाने शायद ही कोई बचा होगा। हम सब लोग किसी तरह एक दूसरे का हाथ पकड़कर जान बचाने के लिए पहाड़ पर चढ़ने लगे। बड़ी मुश्किल से थोड़ा सा ही ऊँचाई पर चढ़े थे कि सर्दी के मारे खड़े हो पाना मुश्किल हो रहा था। हमारे

स्वेटर, कोट सब भीग गए थे। यहाँ तक कि हमारे पर्स भी भीगे जा रहे थे। सब कुछ संभालना मुश्किल हो रहा था।

मेरा बेटा अंशु शिवाकान्त भाई साहब का हाथ पकड़ कर चल रहा था। उनकी बीबी से एक कदम भी चलना मुश्किल हो रहा था। क्योंकि वह तो वैसे भी अक्सर बीमार रहती थीं। वह तो हम लोग उन्हें जबरदस्ती ले आए थे। भाई साहब बोले, 'मैं अंशु के साथ हूँ, तुम भाभी और अंकुर को पकड़ कर ले जाओ।' अंशु रोने लगा। उसके कपड़े पूरी तरह भीग चुके थे, वह ठंड से कांप रहा था। हमारे आस–पास कोई नहीं था। हम लोगों को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि हम क्या करें। बस यूँ ही पहाड़ पर पत्थर पकड़–पकड़ कर चढ़ते जा रहे थे। कहीं कोई छिपने का ठौर ठिकाना मिले पर वहाँ भला क्या था। बरसात कुछ थमने लगी थी। हम लोगों ने सोचा चलो नीचे की साइड उतरने की कोशिश करें, शायद कोई गाड़ी या यात्री वगैरा मिल जाए। रास्ता बुरी तरह फिसलन भरा था। किसी तरह कदम–कदम रख–रख कर कुछ नीचे उतरे पर वहाँ की जो हालत देखी उससे हमारी हिम्मत टूट गई।

सड़क पर जगह–जगह पेड़ गिर गए थे। चट्टानों के गिरने से कई गाड़ियाँ भी दब गईं थीं। देखकर लग रहा था कि शायद कोई नहीं बचा होगा। एक आदमी बुरी तरह चीख रहा था। उसका पैर चट्टान के नीचे दब गया था। अपना पैर न वह निकाल पा रहा था, न कोई और भी उस तक मदद के लिए पहुँच पा रहा था क्योंकि चट्टान का वह हिस्सा बिलकुल नदी में लटका था और किसी भी क्षण नदी में गिर सकता था। ऐसा भयंकर दृश्य कभी नहीं देखा। मेरा बेटा लगातार रो रहा था। मेरी पत्नी किसी तरह उसे अपनी शाल से ढकने की कोशिश कर रही थी। मेरा दिल टूक–टूक हो रहा था। दस घंटे से अधिक हो चुके थे, हमारे मुँह में अन्न का दाना भी नहीं गया था। दूर–दूर तक उम्मीद की कोई किरण नहीं थी हालांकि हमारे पर्स सुरक्षित थे। हमारे पास पैसे भी थे, मोबाइल भी थे, मगर सब व्यर्थ थे। मोबाइल में कोई सिगनल हीं नहीं थे। जब कहीं कुछ मिलेगा ही नही तो पैसे से क्या खरीदोगे। आज हमें पैसों की निरर्थकता समझ में आ रही थी। आज लग रहा था कि विज्ञान चाहे कितनी तरक्की क्यों न कर ले, ईश्वरीय सत्ता के आगे सब कुछ निरर्थक है।

कहीं–कहीं से कुछ रोने चिल्लाने की आवाजें मन में दहशत पैदा कर रही थीं। हमें नहीं मालूम कि कहाँ , कैसे यह सब हो गया। मेरा बेटा अंशु अपने ताऊजी के साथ चल रहा था, अचानक एक चीख सुनाई दी पापा! उसका पैर फिसल गया। मेरे सामने वह फिसल कर लुढ़का । जब तक मैं कुछ समझ पाता एक बड़ा सा पत्थर मेरे बेटे के ऊपर गिर पड़ा। वह वहीं दब गया। एक चीख और मैंने भागने की कोशिश की मगर मैं कुछ नहीं कर सका। मेरा बेटा! यह कहकर वह चीख कर रोने लगे। उनकी व्यथा सुनकर मेरा दिल फटा जा रहा था। मैंने उनको बड़ी मुश्किल से चुप कराया।

फिर कहने लगे कि यह सब देखकर मेरी बीबी बेहोश हो गई। हमारे पास पानी की एक बूँद तक नहीं थी। होश में आने पर वह चीखने लगी, 'मेरा बेटा कहाँ है? उसे लाओ, भगवान ऐसा नहीं कर सकते।' धीरे–धीरे अंधेरा होने लगा था। इतनी सर्दी हम लोग कांप रहे थे। मैं ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि हे प्रभु! मुझे भी उठा लो पर प्राण कहाँ निकलते हैं। कब रात कटी मुझे पता नहीं। सबेरा होते ही कुछ चीलें मंडराने लगीं। लगा पहाड़ पर पड़ी लाशों को खाने के लिए झपटने लगीं थीं। उजाला होने पर मैंने देखा थोड़ी दूर पर मेरी बीबी पड़ी थी। मैंने शोभा–शोभा कहकर उसे हिलाया डुलाया पर लगा कि वह भी मुझे छोड़ कर जा चुकी थी। मेरे परिवार के बाकी लोगों के बारे में मुझे कुछ पता नहीं था। अपनी मरी हुई बीबी के पास मैं बैठा रोता रहा । लगा अब क्या करूँ? मेरे प्राण भी नहीं निकल रहे थे। किसी तरह घिसट–घिसट कर चलने लगा। कई बार मेरा पैर लाश पर पड़ जाता था।

कुछ लोगों को शायद कम चोट लगी थी। वे किसी तरह बचते बचाते निकलने की कोशिश कर रहे थे कि शायद कोई उनकी मदद को आए।

उस दिन मुझे समझ में आ रहा था कि आदमी की जान कितनी कट्टर होती है। वह कैसे कैसे दुख सह लेता है। तीसरा दिन हो चला था। अब मुझमें खड़े होने की ताकत भी नहीं बची थी, इतने घोर दुख में भी मुझे तेज भूख लग रही थी। तभी मैंने देखा कि कुछ कदम पर एक औरत मरी पड़ी थी उसके पर्स में मुझे कुछ खाने का पैकेट दिखाई दिया। मैंने वहाँ पहुँचने की कोशिश की तभी एक बड़ा सा पत्थर लुढक कर आ गया। मेरा पैर उसमें दब गया। उसके बाद क्या हुआ मुझे पता नहीं।

जब होश आया तो मैं अस्पताल में था। डाक्टरों ने बताया कि पैर में इन्फैक्शन होने के कारण मेरा पैर काट दिया गया था। किसी तरह वापस घर आया। भाई साहब बच्चों का कुछ पता नहीं चला। जीने की इच्छा नहीं रही है पर जब दूसरों के बारे में सोचता हूँ तो ईश्वर की मर्जी सोचकर सब्र कर लेता हूँ। मैंने कई चक्कर लगाए, कहाँ–कहाँ जाकर नहीं ढूँढा पर मेरे परिवार का कोई पता नहीं चला। न जाने कितनी लाशें नदी में बह कर कहाँ पहुँची पता नहीं। पिछली बार जब गया तो अस्पताल के बाहर एक औरत मरी पड़ी थी और उसका पांच साल का बच्चा उसके पास ही बैठा रो रहा था। किसी को कुछ पता नहीं किसका बच्चा था। डाक्टर ने कहा, अगर कोई इसे पाल सके तो अच्छा है। मैंने सोचा मेरा बेटा तो रहा नहीं क्या पता उसी के रूप में ईश्वर ने इसे मेरे पास भेजा हो। मैंने डाक्टर से कहा, हाँ इसे मैं पालूँगा। अगर इस बीच इसके माँ–बाप का कुछ पता चल जाएगा तो इसे वहाँ पहुँचा देगें। वह बच्चा मेरे पास ही है।

वहाँ की त्रासदी अखबारों की बहस, .टी.वी. पर दिल दहला देने वाली तस्वीरें देखकर सोचा कि मेरा तो सब मिट ही गया अब भला किसके लिए कुछ करूँ पर लगा कि अपने लिए ना करूँ दूसरों के लिए ही जिऊँ, यही सोचकर एक ग्रीन हाउस संस्था बनाई है जिसके माध्यम से लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक करता हूँ जिससे समय रहते लोगों को विनाश लीला से बचाया जा सके।

ईश्वर का अन्याय था या प्रकृति का बदला था। आदमी ने पहाड़ों पर जितना अतिक्रमण किया है, जितना उसने ड्रिल मशीनें चलाकर अत्याचार किया है, वृक्षों को काटा, नदियों को मोड़ा ,भारी भरकम बांध बनाए, उन सबका प्रकृति ने मनुष्य को दंड दिया है। मैं पर्यावरण जागरूकता अभियान से जुड़ा हूँ जिससे फिर कभी उत्तराखण्ड त्रासदी न हो तथा न ही मेरी तरह किसी का परिवार उजड़े।

मैंने कहा हाँ यह अच्छी बात है। जो चले गए वे वापस नहीं आ सकते पर जो हैं उन्हें तो सुधार लाने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। मैं भी आपके साथ पर्यावरण बचाओ अभियान तथा समाज सेवा के कार्य में शामिल होना चाहती हूँ।